लेखक परिचय

डॉ. हरिओम

जीन्द (हरियाणा) के ग्रामीण आंचल में 10 जनवरी 1959 को जन्में तथा कृषक परिवार की पृष्ठभूमि में आरम्भिक शिक्षा के बाद पी. एच.डी. (सस्य विज्ञान) की डिग्री चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त की। डिग्री हेतू किए गए संकर धान पर उत्तम शोध कार्य के लिए डॉ. वी.डी. कश्यप स्वर्ण पदक से सम्मानित।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सस्य विज्ञान विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत्त हैं। पिछले 24 वर्षों से मुख्य रूप से धान–गेहूं फसल चक्र, फसल प्रणाली व कृषि प्रणाली के उत्पादन सम्बन्धी शोध कार्य में संलग्न हैं। साथ ही देश एवं विदेश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 150 से अधिक शोध पत्रों/लेखों और 6 पुस्तकों/बुलेटिन के लेखन में योगदान किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार 'नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट' में श्रेष्ठ शोध पत्र प्रस्तुति हेतू सम्मानित।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म के लिए 14 नवम्बर 1986 को राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज के चरण कमलों में पहुंचे और दीक्षा ग्रहण की। सतगुरू की आज्ञा से 1 फरवरी 1998 से आध्यात्मिक कार्य के मिशन में संलग्न हैं। अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया और 18 आध्यात्मिक पुस्तकों की रचना की।

अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र
(हरियाणा)

अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?

सर्वाधिकार सुरक्षित

जून 2007

डा० हरिओम
वरिष्ठ वैज्ञानिक

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र
(हरियाणा)

विषय - वस्तु

क्रम सं.	विषय	पष्ठ सं.
1.	आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य	1
2.	अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?	5
3.	जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न	39
4.	पुस्तक सूची	40

राधास्वामी।

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय।

राधास्वामी।

समर्पित

राधास्वामी दयाल परम् संत

सतगुरू ताराचन्द जी महाराज

के चरण कमलों में।

आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज की प्रेरणा से हमने संकल्प लिया है कि आध्यात्मिक कार्यों के लिए किसी से भी पैसों की सेवा नहीं ली जाएगी और किसी आश्रम की स्थापना नहीं की जाएगी क्योंकि मेरा विश्वास है कि यदि कोई आध्यात्मिक सूर्य उदय होना चाहता है तो वह इतना सक्षम है कि वह अपना रास्ता स्वयं ही बनाएगा, यह उसकी आवश्यकता है और मजबूरी भी। यदि वह स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए किसी धन और आश्रमों का मोहताज है तो मुझे ऐसा अध्यात्म स्वीकार नहीं है।

व्यक्ति का धन दीनहीन की सेवा के लिए हो, गुरू की विलासिता के लिए नहीं। आज के अध्यात्म का मार्ग यदि झोंपड़ी की तरफ नहीं जाता है तो वह गुरूओं के आलीशान महलों की तरफ तो कतई नहीं जा सकता है। सर्वभूतों, दीन-दुःखियों और अपने चारों तरफ के वातावरण में ही सतगुरू के दर्शन हों। मनुष्य का हृदय ही आश्रम हो जो हर जीव-अजीव को शांति दे और उसके लिए सुख और परोपकार की कामना करे। व्यक्ति का घर ही आश्रम हो जहां पर माता-पिता और आगन्तुक परमात्मा तुल्य हों। शान्ति, विकास और सुरक्षा का आधार कम्यून, संघ या कोई गठजोड़ नहीं बल्कि स्वयं व्यक्ति हो जो समाज व वातावरण की जरूरत को समझे। व्यक्ति के विकास से समाज और देश के विकास का मार्ग स्वयं ही निर्मित होगा। यही आध्यात्मिक साम्यवाद है जो व्यक्ति एवं घर से आरम्भ होता है और विश्वमानव या महामानव के निर्माण पर इसकी पूर्ति होती है।

अध्यात्म का कार्य करने के लिए और उसमें जीने के लिए हमें किसी मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे की आवश्यकता नहीं है। इस कार्य के लिए केवल एक ही इन्फरा-स्ट्रक्चर या व्यवस्था चाहिए और वह है मनुष्य रूपी शिवालय, मनुष्य रूपी देवालय। मिट्टी के एक तत्व से बने तीर्थ स्थान, मूर्ति या शास्त्र इसकी आवश्यकता नहीं हैं बल्कि परमात्मा के जीवन से भरपूर पंचतत्व से निर्मित मनुष्य का शरीर चाहिए जिसके अन्दर

स्वयं सष्टि का स्वामी निवास करता है। मनुष्य के मन और हृदय में सारे देवी-देवता, सारे तीर्थ व शास्त्र समाए रहते हैं और यहीं से इन सभी की पैदायश है।

बुल्लेशाह कहते हैं-

मन्दिर ढ़ाहदे मस्जिद ढ़ाहदे, ढ़ाहदे जो कुछ ढ़हंदा ए।
पर दिल किसी दा न ढ़ाहवी रब दिलां विच रहंदा ए।।

मेरा ऐसा मानना है कि यदि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक सूर्य अर्थात् विज्ञानमय या आनन्दमय पुरूष की एक किरण भी संचित हो जाती है तो वहां पर हर तरह की बरकत स्वतः ही बहने लगती है। वह धरती सबको अपनी तरफ खींचने लगती है। सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक व आर्थिक चेतना का विकास होने लगता है। किसी समाज में यदि एक भी व्यक्ति ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह समाज ही नहीं बल्कि देश भी उन्नति के शिखर पर पहुंचता है। ऐसे समाज या देश को हानि पहुंचाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। उत्थल-पुत्थल अवश्य आती हैं लेकिन हर उत्थल-पुत्थल जीवन की नई-२ सम्भावनाओं व चुनौतियों को जन्म देती है। कर्मयोगी समाज के लिए यही सम्भावनाएं और चुनौतियां वरदान बनती हैं और सुनहरे भविष्य का निर्माण करती हैं।

मनुष्य के लिए शारीरिक या मानसिक धर्म अलग-२ हो सकते हैं लेकिन आत्मा या रूह का केवल एक ही धर्म हो सकता है और वह है प्रेम। सच्चा प्रेम मनुष्य को जोड़ता है तोड़ता नहीं। प्रेम अनहद है जो हर हद को पार करने का सामर्थ्य रखता है। प्रेम की कोई जात नहीं है, प्रेम किसी धर्म या सम्प्रदाय का मोहताज नहीं है। वह यह नहीं पूछता कि सामने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, सिख है या ईसाई, ब्राह्मण है या शुद्र। वह तो केवल देना जानता है, लेना उसकी फितरत ही नहीं है। अतः इस भौतिक संसार में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही मार्ग और प्रेम ही मंजिल है। इस मार्ग में किसी अवतार, पैगम्बर या मसीहा की बाहरी पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन इनके आदर्शों का अनुसरण करके हमें इन्हें अपने ही अन्दर जीवित करना होगा। इनकी दैविक चेतना का अनुभव हमें अपनी ही आत्मा के अन्दर करना होगा तभी विश्व गांव का सपना साकार

हो सकेगा और धरती पर स्वर्ग बनाने की इच्छा की प्राप्ति हो सकेगी। वरना धर्म और समाज की ये दीवारें मनुष्य को हमेशा आपस में बांटती ही रहेंगी।

प्रेम सार्वभौमिक धर्म है, जिसे मनुष्य के साथ-२ पशु और पौधा भी मानता है। जीव-अजीव की यह सारी सष्टि इसी प्रेम के खिंचाव की शक्ति के कारण ही भिन्न-२ अस्तित्वों में बंटी हुई है और हर एक अस्तित्व अपनी पूर्ति के लिए दूसरे अस्तित्व के चारों ओर चक्कर काट रहा है। पौधा, पशु, पक्षी, जीव-अजीव हमारे किसी धर्म या शास्त्र को नहीं जानते, वे तो बस प्रेम की भाषा को पहचानते हैं। अतः प्रेम का धर्म (धर्मे-सीना) ही व्यावहारिक धर्म है जो मनुष्य को शाश्वत धर्म या धर्मे-हकीकत से वाकिफ करवाता है। इसलिए मानव कल्याण के इस यज्ञ में हमें किसी धन या द्रव्य की आवश्यकता नहीं है बल्कि प्रेम व पवित्र विचार की आहुति चाहिए और उसी के प्रति संकल्प की आवश्यकता है।

माता-पिता और परिवार से मिली आध्यात्मिक पष्ठभूमि ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आध्यात्मिक मिशन का यह कार्य मेरी पत्नी और आध्यात्मिक सहयोगी श्रीमती बिमल की प्रेरणा से आरम्भ हुआ। मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज ने इस प्रेरणादायक चिंगारी को अपनी तवज्जह और दया के हाथ से ध्यान-भजन की हवा देकर ब्रह्म अग्नि में परिवर्तित किया जो हर समय योगयज्ञ की ज्योति (नूर) बनकर अन्दर जलती रहती है और अनहद नाद बनकर खुदाई कलमा (वर्ड) सुनाती रहती है। सम्भवतः इसी आध्यात्मिक चिंगारी को आंखों में देखकर मेरे सतगुरू शहनशाह ने मेरा नामकरण किया और मुझे 'प्रकाश' के नाम से पुकारने लगे। तब से वे हम दोनों को बिमलप्रकाश कहकर पुकारते थे। आज सत्संग का यह कार्य सतगुरू-मुर्शिद की दया और मेहर से ही आगे बढ़ रहा है और इसमें बिमल का विशेष योगदान है। आध्यात्मिक दष्टि से देखा जाए तो बिमल का ध्यान हमेशा ही सारी संगत में अव्वल रहा जिसकी चर्चा मेरे सतगुरू समय-समय पर संगत के बीच में करते रहते

थे।

यह मैं उन लोगों के लिए लिख रहा हूं जो स्त्री को तुच्छ व भोग की वस्तु समझते हैं और कहते हैं कि औरत आध्यात्मिक ऊँचाई को नहीं छू सकती है। मेरे सतगुरू कहते थे कि परमात्मा ने दो ही जातियां बनाई हैं, एक स्त्री व दूसरी पुरूष। यही दो जातियां पुरूष और प्रकति बनकर सष्टि का सजन करती हैं। जब स्त्री और पुरूष स्वयं का आधा अस्तित्व एक-दूसरे को समर्पित कर देते हैं तो ये अर्धनारीश्वर बनकर एक दूसरे का अंग-प्रत्यंग होकर कार्य करते हैं और एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। प्रकति जब अपना पूर्ण समर्पण कर देती है तो यह परामाया या पराप्रकति राधा बनकर पुरूष (स्वामी) के अन्दर समा जाती है और पुरूष पराप्रकति या पराशक्ति बनकर अपने परम् शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है जहां पर लिंग-भेद, जाति-पाति और धर्म-सम्प्रदाय सभी गुण व आकार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। ऐसे ब्रह्मरूप या सतगुरू रूप का अनुभव जो भी व्यक्ति करता है वही ब्राह्मण कहलाता है। कुण्डलीनी शक्ति के सुदर्शन चक्र और आध्यात्मिक सूर्य व चन्द्रमा के दर्शन स्वयं के अन्दर करता है वही सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाता है। ऐसे आत्मिक स्रोत के आगे सारी भौतिक सत्ता की ऐश्वर्यता नतमस्तक हो जाती है और ऐसे स्रोत का मार्ग यदि किसी सांसारिक विलासिता का मोहताज है तो यह एक विडम्बना है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे यह सब प्राप्त हो गया है बल्कि इस आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति मैं प्रयासरत हूं ताकि पूरी मानवता इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहभागी बन सके। अतः इस प्रयास रूपी यज्ञ में मैं आप सब को प्रेम और पवित्र विचार की आहुति देने के लिए आमन्त्रित करता हूं। मुझे विश्वास है कि एक दिन यह आध्यात्मिक लक्ष्य अवश्य ही फलित होगा और पथ्वी पर रहने वाले मानस का अतिमानसीकरण होगा।

प्रस्तुत संकलन इसी आध्यात्मिक मिशन की जागति व पूर्ति के लिए किया गया है। हमें आशा है कि यह संकलन एक क्रियात्मक, रचनात्मक और दिव्यात्मक अध्यात्म को पाठकों के हृदय में प्रज्जवलित करेगा और आत्मिक धर्म तथा सच्चे अध्यात्म की खोज करने में सहायता करेगा।

राधास्वामी।

अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?

मन अनेक आकारों में रहता है इसलिए मन के इन सभी आकारों से छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य को अपना मनपसंद आकार और रूप मिले जहां वह अपने मन के सभी रूप, सारे आकार और पंसद को समर्पित कर सके। अनेक वासनाओं से हटकर वह अपनी मनपसंद जगह पर आकर टिक सके। इसके बाद जब उसका वह इच्छित व्यक्तिगत रूप या आकार पक जाता है तो वह उसके ख्याल में समा जाता है और उसे सतगुरू के ख्याली रूप के दर्शन होने लगते हैं, फिर वही ख्याली रूप नूरी रूप और फिर नादी (अनहद नाद) रूप में बदल जाता है जिसमें से सारा ज्ञान, समस्त आकार और रूप जैसे देवी, देवता, पैगम्बर, अवतार आदि प्रकट होते हैं। इससे उसकी समझ बढ़ती चली जाती है और वह चेतना की विशालता में समाता चला जाता है। वह धीरे-धीरे मन की सीमित दीवारों को लांघ जाता है। विचार की परिधि को पार कर जाता है, सारी भावनाओं को पीछे छोड़ जाता है, यही है भावातीत, विचारातीत और मनातीत ध्यान की सिद्धि।

एक व्यक्ति मुझसे कहने लगा कि अब उसका ध्यान नहीं बनता है। मैंने उससे पूछा कि कितना स्मरण करते हो? मैंने यह नहीं पूछा कि अपने सतगुरू या अपने इष्ट से कितना प्यार करते हो। यदि प्यार है तो फिर सतगुरू के प्रति पक्का ख्याल स्वयं ही स्मरण बन जाता है फिर जुबानी स्मरण की कोई अहमियत भी नहीं रहती है। ऐसा स्मरण केवल

गुरूमुख ही कर सकता है जिसने सतगुरू या परमात्मा को अनुभव में उतार लिया है। कबीर साहब इस अवस्था में आकर कहते हैंः

मन जो सुमिरे राम को, राम बसे घट माहि।
अब मन रामहि हो रहा, शीश नवाऊं काहि।।

जब तक राम घट में बसता है तब तक स्मरण करता हूं लेकिन जब स्मरण करने वाला मन ही राम हो गया है तो अब किसको शीश नवाऊं। अब तो माला फेरने की भी जरूरत नहीं रही है क्योंकि मेरा सांई स्वयं ही मुझको भजने लगा है, यह है गुरूमुख की हालत लेकिन इससे पहले स्थूल अर्थात् जीभ का स्मरण भी करना पड़ता है, ख्याल की टकटकी लगानी पड़ती है। फिर धीरे-धीरे नाम का स्मरण इतना पक्का हो जाता है कि नाम स्वास के अन्दर उतर जाता है, यह नाम का लगातार स्मरण के द्वारा स्वासम-स्वासा पीना है अर्थात् नाम को स्वासों के अन्दर पी जाना है। लगातार स्मरण के द्वारा स्वासों की लड़ी के अन्दर नाम के मणिके पिरो दिए जाते है। यह नाम की माला स्वास के साथ-साथ स्वयं ही घूमती रहती है और एक समय ऐसा आता है जब नाम चेतना के अन्दर उतर जाता है, आत्मा का अटूट अंग बन जाता है फिर नाम की माला चेतना का प्रकाश बनकर तीसरे तिल के स्थान पर बहने लगती है। नामी स्वयं प्रकट हो जाता है, मन स्वयं राम बन जाता है। अतः सुरत-शब्द योग में अन्दर की माला फेरी जाती है, इसमें बाहर की माला फेरने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। लेकिन स्थूल स्मरण के बिना यह अजपा जाप संभव नहीं है।

मैंने उस व्यक्ति से पूछा कि कितना स्मरण करते हो? उसने कहा कि स्मरण तो नहीं होता है। मैंने कहा कि यदि स्मरण नहीं है तो ध्यान नहीं बन सकता। स्मरण ध्यान की पहली सीढ़ी है। प्रेम पैदा करने से ही स्मरण व ख्याल की टकटकी लग सकती है। जैसे लोभी की टकटकी हर समय धन के ऊपर लगी रहती है, कामी की टकटकी चौबीस घंटे कामिनी के ऊपर लगी रहती है उसी प्रकार गुरूमुख की गति होती है, उसका मुख हर समय गुरू या अपने इष्ट की तरफ रहता है, वह उसके प्रेम के वियोग में घायल रहता है। सतगुरू के मिलन की चाह में तड़फता रहता है इसलिए सतगुरू-प्रेम और स्मरण ऐसी दोधारी तलवार है जो ध्यान की किसी भी रूकावट को पल में धराशाही कर देती है। इसके बगैर ध्यान में उन्नति करना बहुत ही कठिन है लेकिन हम क्या कहते हैं? कहते हैं कि तटस्थ हो जाओ, साक्षी हो जाओ। दुःख आए तो दुःख मत मानो और सुख आए तो सुख मत मानो, केवल साक्षी होकर देखो।

तटस्थ होना एक मानसिक अवस्था है, यह कोई बड़ी बात नहीं है। इसे तो अंधकार में रहने वाला व्यक्ति भी कर सकता है। मैं पूछता हूं कि आप कितने तटस्थ हो सकते हैं? कितने भी तटस्थ हो गए हो, कितना भी गोरखनाथ बनने का अभ्यास कर लिया है, कितने भी प्राणायाम किए हैं, शरीर को कितना भी तपाया है, आप कितना तटस्थ हो सकते हैं? कहते हैं कि तपस्वी गोरखनाथ के शरीर पर जब लोहे का हथौड़ा मारते थे तो वह टन बोलता था अर्थात् उन्होंने अपने शरीर को बहुत अधिक साध रखा था। कितने भी तटस्थ बन जाओ

यदि मैं आपके शरीर में सूई गड़ा दूं तो क्या आपको दर्द नहीं होगा? यदि आपके पास खुशी आएगी तो क्या आप खुश नहीं होंगे? यदि कार्य को पूरा करने में वाकई मेहनत की गई है तो उसके पूरा होने पर संतुष्टि तो अवश्य ही मिलेगी। यह संतुष्टि ही खुशी को जाहिर करती है। यदि ऐसा नहीं हो तो आपकी कार्य को पूरा करने में रूचि भी नहीं रहेगी। कार्य की दूसरी सीढ़ी पर चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी को पार करना आवश्यक है। यह बात सभी कार्यो के लिए सत्य है चाहे आप सांसारिक कार्य करते हैं या आध्यात्मिक मार्ग पर चल रहे हैं। बल्कि आध्यात्मिक मार्ग तो और भी चरणबद्ध और लयबद्ध होकर चलने का मार्ग है और जब तक पहले चरण का कार्य अधूरा है तब तक दूसरा कदम नहीं उठ सकता है। सारा जीवन घटनाओं की श्रंखला है और जब तक हम जीवन को श्रंखला या चरणों में जी रहे हैं तथा कार्य को पूरा करने के लिए बुद्धि के अन्दर कोई भी नक्शा तैयार करते हैं तब तक हम कार्य के पूरा होने पर संतुष्ट हुए बगैर नहीं रह सकते हैं। भूखे शरीर को भोजन मिलने पर शरीर के अणु-परमाणुओं या शरीर में बह रही जीवन शक्ति का संतुष्ट होना एक नियम की बात है। भूख लगने पर शरीर के अणु-परमाणुओं के अन्दर एक खिंचाव पैदा हो जाता है और जब शरीर के अन्दर भोजन का कण जाता है तो वह खिंचाव शांत होने लगता है, एक तप्ति का अहसास होने लगता है और जब तक तप्ति है तब तक संतुष्टि है तथा जब तक संतुष्टि है तब तक खुशी का इजहार भी है। इस खुशी के इजहार को हम कितना भी छिपाएं, शरीर और मन की यह भावना छिपाने से छिपाई नहीं जा सकती है।

तप्ति, संतुष्टि और खुशी चेतना की भिन्न-भिन्न अवस्थाएं हैं और जब तक शरीर में चेतना का प्रवाह है तब तक शरीर वातावरण से प्रभावित भी अवश्य ही होता है और जब तक यह वातावरण के प्रति संवेदनशील है तब तक व्यक्त या अव्यक्त तरीके से मन व बुद्धि सुख-दुःख का प्रदर्शन भी अवश्य करेंगे। सुख-दुःख की यह अभिव्यक्ति कहीं पर अधिक होगी और कहीं पर कम या मध्यम। इससे बचा नहीं जा सकता है। जागत व्यक्ति तो इससे कदापि नहीं बच सकता है। शायद एक पत्थर या पत्थरवत इंसान ऐसे प्रभाव से बचने का दावा कर सकता है। जागत व्यक्ति के शरीर, इन्द्रियों, मन व बुद्धि के अन्दर चेतना का प्रवाह इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह एक साधारण व्यक्ति की तुलना में बहुत अधिक संवेदनशील हो जाता है। सामने आने वाली हर घटना तुरंत प्रभाव से उसकी चेतना में अंकित हो जाती है और उस घटना के कारण और परिणाम एक कम्प्यूटर की भांति तुरंत उसकी पकड़ में आ जाते हैं जो एक स्थूल व्यक्ति के अंदर संभव नहीं है। स्थूल व्यक्ति की चेतना का प्रवाह धीरे-धीरे होता है, उसमें जड़ता होती है। स्थूलता होती है। महाचेतन की सत्ता के साथ उसका संयोग नहीं होता है। इसलिए किसी भी तामसिक वस्तु या व्यक्ति का किसी जागत महात्मा के समीप ठहरना कठिन होता है। इसी प्रकार एक प्रबुद्ध व्यक्ति भी तामसिक व्यक्तियों की निकटता अधिक पंसद नहीं करता है, यह एक कुदरती नियम है। स्थूल व्यक्ति का कार्य करने का तरीका भिन्न है और प्रबुद्ध व्यक्ति का ठहराव चेतना के अलग स्तर पर है। दोनों की चेतना की संतुष्टि की जरूरतें भिन्न-भिन्न हैं।

तटस्थ होना या साक्षी होना ही हमारा मकसद नहीं है। हमारा मकसद है बिखरी हुई चेतना को एकत्रित करना तथा शरीर, प्राण व मन के अन्दर उसके प्रवाह को बढ़ाना। चेतना की अधिकता समस्याओं की न्यूनता है तथा चेतना की न्यूनता समस्याओं की अधिकता का द्योतक है। समस्याएं चाहे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक या आध्यात्मिक हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। यदि समस्या आ जाती है तो विवेकख्याति प्राप्त व्यक्ति उस समस्या का इलाज तुरंत ढूंढ लेता है लेकिन एक मूढ़ व्यक्ति सालों तक और जीवन पर्यंत उसी समस्या के साथ जूझता रहता है तथा अपने आसपास के वातावरण को भी तनावपूर्ण रखता है। इसलिए तटस्थ होना और साक्षी होना केवल शरीर और मन का मकसद हो सकता है, आत्मा का नहीं। आत्मा का मकसद है अपनी बिखरी हुई सत्ता को पाना, अपने खोए हुए साम्राज्य को प्राप्त करना व अपने प्रीतम के रूप में मिलकर निजरूप को प्राप्त करना। जब चेतना के स्तर में वद्धि होगी तो शरीर और मन को अपने संकल्प-विकल्पों का त्याग करना होगा, अपने अहंकार का विसर्जन करना होगा। इस प्रक्रिया में साक्षी होने के लिए समय ही कहां बचता है। तटस्थ या साक्षी होने का अभ्यास करना उसी प्रकार है जिस प्रकार घर के अन्दर गन्दगी भरी पड़ी है और बाहरी दिवारें रंग-रोगन से चमक रही हैं। चेतना की चादर दागों से भरी हुई है और बाहरी शरीर व मन को ज्ञान की स्याही से लीप दिया गया है। जब चेतनघन बढ़ता है तो शरीर व मन में चेतना का बहाव भी बढ़ता है, शारीरिक व मानसिक चेतना के ऊपर जितने भी

अवरोध हैं, कर्म जड़ित हैं उन सबकी जड़ें हिलने लगती हैं, उनके संस्कार झड़ने लगते हैं, प्रकति की ताकतों का किला टूटने लगता है, मन रूपी रेत की जर्जर दिवारों से निर्मित भवन चरमरा कर गिरने लगता है। निरंतर अभ्यास बढ़ने से आत्मा का मण्डल बढ़ता चला जाता है। शरीर, इन्द्रियों और मन की शक्ति आत्मा के मण्डल में स्वयं का समर्पण करती चली जाती है। अन्तर में आत्मा सूर्य बनकर चमकने लगती है। शरीर को मजबूत रखने के लिए ऐसे व्यक्ति को कर्मक्षेत्र में उतरना ही पड़ता है। शरीर में ज्यों-ज्यों आत्मिक चेतना बढ़ती है शरीर के व्यवहार में बदलाव आने लगता है, शरीर के सिस्टम और उनका कार्य प्रभावित होने लगता है। इसलिए शरीर की मजबूती के लिए व्यक्ति को अपना कर्म नहीं छोड़ना चाहिए। शरीर, मन और आत्मा तीनों की ऊर्जा आपस में बेमेल है, एक-दूसरे की विरोधी है लेकिन एक दूसरे की सहायक भी है और एक दूसरे के विकास में सहायता करती है इसलिए तीनों के स्तर पर मजबूत रहने के लिए शरीर का मजबूत होना सबसे जरूरी है लेकिन इस विज्ञान की समझ न होने के कारण व्यक्ति का शरीर बिमारियों की पकड़ में आ सकता है। अतः चेतना का शरीर में बढ़ना और शारीरिक विज्ञान का सही ज्ञान न होना हानिकारक भी हो सकता है।

बच्चे के अन्दर सबसे पहले शरीर बढ़ता है लेकिन ज्यों ही मन विकसित होने लगता है तो शरीर की बढ़वार कम हो जाती है और ज्यों ही आत्मा का केन्द्र बनने लगता है तो मन भी आत्मिक शुन्य की गहराइयों में जाकर कमजोर पड़ने लगता है, अपने संकल्प हारने

लगता है और समय के साथ स्मति भी खोने लगता है। इतना अवश्य है कि हर अवस्था के साथ मनुष्य के अन्दर अनुभव की जागति या परिपक्कवता बढ़ती चली जाती है। आयु के साथ शरीर गिर गया है, मन अपनी स्मतियां भूलने लगा है लेकिन अनुभव का एक-एक शब्द कीमती हो गया है और समूचे संसार या सारे देश का दिशा निर्धारण कर रहा है। यही आत्मिक केन्द्र का निर्माण होना है, लेकिन बहुत से लोगों में तो यह केन्द्र सारा जीवन आकार ही नहीं ले पाता है इसलिए उनके शब्दों की कोई अहमियत नहीं होती है। इस आत्मिक केन्द्र के भी भिन्न-भिन्न आयाम हैं, भिन्न-भिन्न दर्जे हैं, इसलिए भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न स्तर का अनुभव संचित होता है। किसी के अन्दर चेतना की कम कलाएं खुलती हैं तो किसी के अन्दर अधिक। जिसके अन्दर दस से अधिक कलाएं या चक्र खुल जाते हैं तो वह व्यक्ति अवतार कहलाता है, पुरूषों में उत्तम (पुरूषोतम) कहलाता है। आत्मा के अन्तिम शुन्य में विलीन हो जाना महायोग कहलाता है। ऐसा योगी केवलज्ञान या मोक्ष का अधिकारी बनता है, विवेकख्यातिप्राति जिसका लक्षण है।

आध्यात्मिक विज्ञान के अनुसार चेतना का बढ़ना और शरीर का तटस्थ होना दोनों ही विपरीत अवस्थाएं हो गई हैं। शारीरिक योग और आत्मिक योग दोनों ही एक ही वस्तु के विपरीत सिरे बन गए हैं। एक सिरे की शक्ति बढ़ती है तो दूसरा सिरा अपना संकल्प हारने लगता है और यदि दूसरे सिरे की ताकत बढ़ती है तो पहला सिरा कमजोर पड़ने लगता है। यही कारण है कि बुद्धिशील व्यक्ति का भोजन कम हो जाता है क्योंकि उसके अन्दर स्थूलता का अंग कम हो

जाता है और चेतना की सूक्ष्मता बढ़ती चली जाती है। अध्यात्म में दोनों सिरों का तालमेल रख पाना एक चुनौती है और आवश्यकता भी। आप कितनी अधिक आत्मिक चेतना को अपने अन्दर संचित कर पाए हैं और उसके साथ-साथ शारीरिक चेतना के साथ भी कितनी लयबद्धता रख पाने में समर्थ हो पाए हैं, यह पैमाना आपके योग की दक्षता का निर्धारण करता है। श्री अरविंद का सम्पूर्ण योग चित्त-शक्ति की इसी पूर्णता का पक्षधर है। वे शरीर, प्राण, मन और आत्मिक चेतना की इसी लयबद्धता को रूपान्तरण की संज्ञा देते हैं जो पथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य स्थापित करने के लिए आवश्यक है।

जब चेतना का स्तर बढ़ जाता है तो उसमें घनता आने के कारण चेतना की चंचलता भी घट जाती है, उसमें उतार-चढाव कम हो जाता है। मन की लहरें शांत हो जाती हैं, साक्षीत्व का यही अन्तिम लक्ष्य भी है। साक्षीत्व स्वयं ही प्राप्त हो जाता है लेकिन आरम्भ से ही साक्षी होने का अभ्यास करना व्यक्ति की नासमझी है, जड़ता है। मन के अन्दर छिपा हुआ मैल तभी खारिज होता है जब अन्दर में चेतना की घनता बढ़ती है और यह घनता केवल ध्यान अभ्यास से बढ़ती है, प्रेम के अवतरण से बढ़ती है। कोई भी ज्ञान का बीज इस घनता में अवरोध पैदा करता है क्योंकि विचार शुन्यता ही आत्मिक शुन्यता में सहभागी बन सकती है। इस घनता को बढ़ा सकती है। अन्दर में चेतना का बहाव जितना अधिक बढ़ता चला जाएगा, काल, माया और पदार्थ के मैल उतने ही कम होते चले जाएंगे और मनुष्य काल तथा माया के प्रभावों से मुक्त होता चला जाएगा। ज्ञान और विवेक स्वतः ही बढ़ते चले जाएंगे।

जब आत्मिक और शारीरिक चेतना की तारतम्यता बिगड़ जाती है, लयबद्धता टूट जाती है तो उसका खामियाजा शरीर को भुगतना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप स्वामी विवेकानंद और शंकराचार्य जैसे महायोगियों को भी अल्पकाल में ही शरीर का त्याग करने पर मजबूर होना पड़ता है। आखरी समय में विवेकानन्द मत्यु-शैया पर लेटे हुए कह रहे हैं कि देखो! मेरी मां काली मुझे लेने आ गई है, उसका चेहरा स्वर्णिम कांति से झिलमिला रहा है, अब सफेद और अब नीलिमा ओढे हुए प्रकाश की आभा से आलोकित है। स्वामी जी का यह वर्णन योग और वेदांत की सम्प्रज्ञात व सविकल्प समाधि को सिद्ध कर रहा है। आत्मिक योग साध लिया गया है लेकिन सम्पूर्ण योग की साधना शेष रह गई है। शारीरिक, प्राणिक और मानसिक चेतना ने आत्मिक चेतना में स्वयं का पूर्णरूपेण समर्पण कर दिया है लेकिन आत्मिक चेतना का उपयोग प्राण को शरीर में रोकने के लिए नहीं हो पाया है। भौतिक प्रकति का रूपान्तरण अधूरा रह गया है। शरीर, जीवन और मानसिक शक्तियों का यह अधूरा रूपान्तरण ही संसार में क्लेश उत्पन्न करता है, अफरा-तफरी का कारण बनता है। आपसी विरोध पैदा करता है इसलिए श्री अरविंद कहते हैं कि सम्पूर्ण शांति और दिव्यता के लिए भौतिक चेतना का अतिमन (सुपरमाईड) के द्वारा रूपान्तरण आवश्यक है। रूपान्तरण की इस पूर्णता के बाद ही श्री अरविन्द का सम्पूर्ण योग सिद्ध हो पाता है लेकिन सुरत-शब्द योगी के लिए रूपान्तरण की यह प्रक्रिया स्वतः सिद्ध है क्योंकि इस योग में निर्विकल्प समाधि चेतना की बहुत ऊंची अवस्था में जाकर सिद्ध होती

है जो मात्र चेतना का ठहराव नहीं है बल्कि यह योग एक ही समय में दो तरह के अनुभव को संचित करता है अर्थात् यह गति में ठहराव और ठहराव में गति के अनुभव को इंगित करता है। चेतना का यही व्यवहार जीवन शक्ति के रूपान्तरण में धुरी का काम करता है।

हम शरीर को तटस्थ बनाने के लिए यौगिक क्रियाएं करते हैं लेकिन फिर भी आप शरीर को कितना तटस्थ कर सकते हैं? यदि मन स्थिर नहीं है तो शरीर स्थिर नहीं हो सकता है, यदि आत्मिक चेतना स्थिर नहीं है तो मन की हलचल नहीं थम सकती है। आध्यात्मिक व्यक्ति ज्ञान के अहंकारवश होकर गंभीर होने का प्रयास करते हैं। ईसा मसीह कहते हैं कि हमें बच्चा बनना होगा। बच्चा गंभीर व्यक्ति से हमेशा चिड़ता है। माना कि आप इतने तटस्थ हो गए हैं, आप इतने स्थिर हो गए हैं कि आपको सुख-दुःख नहीं भासता है, आपको इनका असर ही नहीं होता है, आप इतने साक्षी हो गए हैं, इतने सहज हो गए हैं कि आपको सुख-दुःख, लाभ-हानि का कोई ख्याल ही नहीं है तो क्या आप सर्दी-गर्मी के प्रति भी तटस्थ हो पाए हैं? ऐसा नहीं है और यदि ऐसा है तो आप पत्थर के समान हैं जिसके ऊपर सर्दी-गर्मी का कोई प्रभाव नहीं होता है, क्योंकि उसमें जान नहीं हैं, चेतना की अभिव्यक्ति नहीं है। इतना अवश्य है कि हर व्यक्ति की संवेदनशीलता अलग-अलग होती है, मान लो कि कोई व्यक्ति इतना तटस्थ हो गया है फिर भी वह सांस तो अवश्य लेता है। भगवद् गीता में श्रीकष्ण कहते हैं कि यदि मैं सांस लेना छोड़ दूं तो सष्टि की पल में प्रलय हो जाएगी और न ही इसकी उत्पत्ति हो सकेगी। व्यक्ति सांस

लेगा तो क्या होगा? फेफड़ों में वायु जाएगी। शरीर के जो सैल हैं, कोशिकाएं हैं उनके अन्दर सांस लेने से वायु जाएगी और वे भी फैलेंगे और सिकुडेंगे। आपकी नाड़ी और फेफड़े भी फैलेंगे और सिकुड़ेंगे। उनको कैसे रोकोगे? क्या उन्हें तटस्थ किया जा सकता है, गतिहीन किया जा सकता है। मान लिया कि आप प्राणायाम के द्वारा यह भी कर लें, क्योंकि प्राणायाम का अंतिम लक्ष्य यही है। फिर भी प्राणायम चौबीस घंटे या हर समय तो नहीं किया जा सकता है। किस-किस अंग को आप तटस्थ कर पाएंगे, किस-किस के प्रभाव से बच पायेंगे। लेकिन फिर भी यदि यह मान लिया जाए कि आप श्वास या श्वास के अन्दर प्राण को स्थिर करने में कामयाब हो जाते हैं, क्या आप मन के अन्दर पड़े हुए विचारों को स्थिर कर सकते हैं। मैं बोलता जा रहा हूं, बुद्धि के अन्दर ज्ञान की परतें उधड़ती जा रही हैं। विषय के संबंध में मेरे पास जो ज्ञान है उसे उन परतों से खींचता जा रहा हूं, कभी मन की एक परत उघाड़ता हूं तो कभी दूसरी। मस्तिष्क की चेतना के अन्दर कितनी हलचल हो रही होगी, क्या इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। मैं कहता हूं कि शरीर और मन के स्तर पर तटस्थ होना संभव नहीं है तथा न ही इन्हें तटस्थ या शांत करने के लिए किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए यौगिक क्रियाएं करना लाभदायक है लेकिन इसी अभ्यास पर अटक जाना बुद्धिमता की बात नहीं प्रतीत होती है। फिर बढ़ती आयु के साथ-साथ शरीर की ऐसी स्थिरता या तटस्थता टूटे बगैर नहीं रह सकती है। इसलिए शरीर तटस्थता का विषय नहीं है, मन भी तटस्थता का विषय नहीं

है। इसे स्थिर करने के लिए साक्षीत्व का अभ्यास किया जा सकता है क्योंकि साक्षी होना भी मन का एक गुण है, लेकिन यह भी एक सीमा के अन्दर ही कामयाब हो सकता है क्योंकि असली मुद्दा आत्मा की जागति का है। जब तक आत्मा के अन्दर स्थिरता नहीं है, आत्मिक मण्डल (प्रकाश और नाद) के दर्जे पार नहीं किए गए हैं तब तक हम चेतना की बाहरी व्यवस्था के साथ लिपटे हुए हैं। जब तक समुन्द्र की गहराई में ठहरने का अभ्यास नहीं किया गया है तब तक किनारों की शांति का कोई अर्थ नहीं है। अनजाने स्थान से कोई लहर ज्वारभाटा बनकर आएगी और किसी भी समय किनारों की स्थिरता को भंग करके चली जाएगी। इसलिए ऐसा अभ्यास जो विचार शुन्यता को जन्म दे, केवल वही शरीर और मन को स्थिरता प्रदान कर सकता है। अतः चेतना के निर्लेप स्तर की प्राप्ति या न्यूट्रल स्तर की प्राप्ति ही मन और शरीर की अवांछित हलचल को रोक सकती है। आत्मा की ऐसी शुद्ध, निर्लेप या न्यूट्रल चेतना जो कभी जन्म नहीं लेती, जिसकी मत्यु भी कभी नहीं होती है, मन और शरीर की चेतना को शांति प्रदान कर सकती है। इससे पहले यह संभव नहीं है। प्राणायाम का अभ्यास शरीर व प्राण की स्थिरता और मजबूती के लिए किया जाता है। विपश्यना ध्यान मन के साक्षीत्व को बढ़ाने के लिए किया जाता है। स्वांस को आधार बनाकर मंत्र का जाप करना भी मन के इसी साक्षीत्व को पकाने का अभ्यास है, ये सभी अभ्यास सुरत-शब्द योगी के लिए चेतना की बाहरी व्यवस्था का हिस्सा हैं। नीचे का व्यवहार हैं।

मन के स्तर से मन को काबू में करना संभव नहीं है। साक्षीत्व का अभ्यास मन के स्तर से होता है। एक न्यूट्रल शक्ति का संबंध किसी भी प्रकार के साक्षीत्व से नहीं हो सकता है। मन को काबू में करने की जरूरत भी नहीं है। मन को काबू में करने के लिए मन के स्तर पर जो संघर्ष होगा वह भी मन का ही अंग होगा। मन को छोड़ देना है। मन से ऊपरी आयाम पर चले जाना है, आत्मा के मण्डल में दाखिल हो जाना है जो मन को जीवन देने वाली शक्ति है। यदि उस शक्ति की धार को मन से अलग कर दिया जाए या मन तथा विचारों के अन्दर से बहने वाली चेतन धार को आत्मिक मण्डल में वापिस खींच लिया जाए तो मन स्वतः ही विचार शून्य होता चला जाएगा, स्वयं का समर्पण करता चला जाएगा। उसका अस्तित्व आत्मिक मण्डल में विलीन हो जाएगा। इसके बाद मन के स्थान पर आत्मिक शक्ति का नियंत्रण हो जाएगा। फिर आत्मा मन का विचार बनकर नहीं बल्कि अन्तः प्रेरणा और आत्मज्ञान बनकर हर कार्य को अंजाम देगी। हर कार्य या विचार पर परमात्मा की मंजूरी की मोहर होगी। अब कर्ता अहंकार या मन नहीं होगा बल्कि पुरूष (आत्मा) स्वयं सारथी बनकर श्री कष्ण की भांति अर्जुन का मार्गदर्शन करेगा। मन की भागेदारी समाप्त हो जाएगी। कर्म करने वाली स्वयं आत्मा होगी इसलिए कर्मफल पर भी उसी का अर्थात् परमात्मा का अधिकार होगा। मैं ऐसा कर रहा हूँ - यह भावना समाप्त हो जाएगी। बल्कि ऐसा हो रहा है - यह भावना प्रबल होती चली जाएगी। व्यक्ति प्रकति के कार्य में बाधा डालना बंद कर देगा। प्रकति के हर कार्य में उसे

परमात्मा की मंजूरी दिखाई देगी अर्थात् कण-कण में उसे परमात्मा के दर्शन होने लगेंगे। स्वयं का प्रयत्न भी परमात्मा के कार्य का एक हिस्सा बन जाएगा।

मन के संकल्प को तोड़ने के लिए मन के साथ लड़ने की जरूरत नहीं है बल्कि इस लड़ाई से हट जाने की जरूरत है और इसे भूलकर दूसरे आयाम की शक्ति को निमंत्रण देने की जरूरत है। घर के नौकर जब अनुशासनहीन हो जाते हैं तो घर का मालिक आते ही वे लाईन में हाजिर हो जाते हैं। नौकर नीचे के आयाम की शक्ति है और मालिक ऊपर के आयाम पर स्थित ताकत है। इसी प्रकार आत्मा और मन का खेल है। इसलिए शरीर और मन की तटस्थता के लिए आत्मा की शक्ति का अवतरित होना आवश्यक है, आत्मा का अधिष्ठाता बनकर स्थिर होना जरूरी है। यही भगवद् गीता का भी संदेश है। स्थितप्राज्ञ इसी अवस्था का नाम है। साक्षी बनकर हम किसी कार्य या विचार को गलत ठहराते हैं और किसी को सही लेकिन जब आत्मा अधिष्ठता बन जाती है तो सारा जगत और इसके सारे कार्य ही ईश्वर की कति मालूम पड़ते हैं। अच्छी या बुरी हर वस्तु का उपयोग दिखाई देने लगता है। गिले-शिकवे और शिकायतें समाप्त होने लगते हैं, सारी प्रकति सुंदर और हंसती हुई दिखाई देने लगती है। अन्दर का सारा विभाजन और क्लेश मिटने लगता है। परममुक्त अवस्था को प्राप्त करने के लिए यह सबसे पहला और आवश्यक आध्यात्मिक कदम है। साक्षीत्व के अभ्यास में यह अवस्था कभी नहीं आ सकती है। साक्षीत्व में साक्षी का चुनाव करने का भाव

अन्तिम बिन्दू तक बना रहता है और जब तक चुनाव है तब तक व्यक्तिगत अहंकार मौजूद रहता है और अन्दर में विभाजन बना रहता है इसलिए मन की परिधि से बाहर निकल पाना सम्भव नहीं है। एक विभाजित व्यक्ति कभी भी अपनी कमजोरियों से छुटकारा नहीं पा सकता है। प्रेम में ऐसा गुण है कि वह मन और ज्ञान के स्तर से उत्पन्न हुए किसी भी सूक्ष्म से सूक्ष्म विभाजन को पाटने में समर्थ है। इसलिए सतगुरू प्रेम सुरत-शब्द योग का प्राणतत्व है जिसके अन्दर मन के पार जाने की क्षमता है।

शरीर और मन आत्मिक चेतना के बाहरी खौल हैं, बाहरी परतें हैं। बाहरी स्तर पर चेतना हमेशा चलायमान रहती है। जिस प्रकार समुंद्र की गहराई में अथाह शांति है, कम से कम हलचल है और गति में भी ठहराव है लेकिन सतह पर आते-आते उसमें हलचल पैदा होने लगती है और ऊपर सतह पर आकर तो ऊंची-ऊंची लहरें उठती हैं, ज्वारभाटे उठते हैं। जितनी अन्दर की गहराई अधिक है उतनी ही शांति और समुंद्र की ताकत भी अधिक है तथा सतह के ज्वारभाटे भी गहराई के साथ-साथ बढ़ते जाते हैं। जितनी गहराई कम है उतनी ही सतह की लहरों की ऊंचाई भी कम है और उसकी शक्ति भी कम हो जाती है, अन्दर की शांति और ठहराव में भी कमी आ जाती है। इसी प्रकार जितनी अधिक आत्मा की गहराई है उतना ही मजबूत मन होता है क्योंकि मन आत्मा का ऊपरी खौल है। यदि आत्मा कमजोर है तो मन की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। संसार का सारा कार्य मन के स्तर से ही संचालित होता है, आत्मा

तो केवल उस मन की शक्ति बनकर उसके पीछे खड़ी हुई है। हम यह भी कह सकते हैं कि मन ही अपने शुद्ध स्वरूप में आत्मा है और आत्मा ही बाहर की परिधि पर आकर मन कहलाती है। मन के बगैर आत्मा कोई भी क्रिया करने में असमर्थ है जिस प्रकार समुंद्र की ऊपरी सतह ही वर्षा बनकर सारी वनस्पति और जीवन को प्राण देती है। लेकिन यह भी ध्यान में रखना होगा कि विनाशकारी तूफान और प्रलय भी ऊपरी सतह की ही देन हैं जो पल में सारे संसार का विनाश कर सकते हैं। इसका यह अर्थ है कि यदि आत्मा की गहराई अधिक है तो वह अत्यधिक परोपकारी भी हो सकती है और यदि इसका दुरूपयोग किया जाए तो यह प्रलयंकारी भी हो सकती है।

इससे यह भी स्पष्ट है कि यदि आत्मा और मन की गहराई व ताकत अधिक है तो वहां से शक्तिशाली संतान और शक्तिशाली साम्राज्य भी अस्तित्व में आएंगे लेकिन यदि उस शक्ति के अन्दर अनुशासन का प्रबंध नहीं किया गया तो वही शक्ति विनाशकारी युद्धों में भी तबदील हो सकती है। इसलिए ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान जो संसार में प्रवति पैदा करे वह विनाश को जन्म देता है। ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान जो कहता है कि ईश्वर का साम्राज्य संसार में ही स्थापित करना है वह ज्ञान संसार के प्रति आसक्ति व प्रवति पैदा करता है और इसका परिणाम यह हुआ है कि मानव जाति को अनेकों प्रलयंकारी युद्ध झेलने पड़े हैं। इस इच्छा ने संसार को जीतने की इच्छा को जन्म दिया है। इसके विपरीत यदि ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान जो मनुष्य के अन्दर निवति पैदा करे वह ज्ञान परोपकारी बनता है

और सहनशीलता का पाठ पढ़ाता है। भारतीय ज्ञान हमेशा से ही संसार की मोह-माया के प्रति उदासीन रहा है और निवति का अनुसरण करता रहा है, निर्वाण (एक्सटींक्सन आफ सैल्फ) की प्राप्ति अर्थात् स्वयं को पूरी तरह से मिटाने पर जोर देता आया है। यही कारण है कि भारतीय धर्मों ने सदा ही प्रेम, भाईचारा, विश्व-बधुंत्व और सहनशीलता की शिक्षा दी है। इसलिए यहां पर जो भी आक्रमणकारी आए वे यहां की संस्कति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके और अधिकतर तो यहीं पर रच-बस गए। समय के थपेड़ों ने संसार की सारी सभ्यताओं की विचारधारा को बदल दिया लेकिन यहां कि विचारधारा और ज्ञान हजारों साल बाद भी संसार के लिए धरोहर बने हुए हैं और संसार के लोगों को प्रभावित कर रहे हैं।

बाहरी स्तर पर आकर चेतना का व्यवहार बदल जाता है। जो चेतना गहराई में जाकर अति शांत है वही सतह पर आकर गतिशील बन जाती है, जो चेतना गहराई में जाकर अडोल है वही सतह पर आकर आकाश की ऊंचाई पर छलांग लगाने लगती है। इसलिए मैं विज्ञान की इस बात से सहमत नहीं हूं कि सूर्य के मध्य में उसकी सतह से करोड़ों डिग्री तापमान अधिक है। यह सही है कि सूर्य की सतह पर ऊर्जा की स्थिति अत्यंत विस्फोटक है लेकिन यह भी असत्य नहीं हो सकता है कि जो शक्ति सतह पर इतनी अधिक विस्फोटक है वह शक्ति अपने केंद्र में उतनी ही अधिक शांत और अडोल होती है। तभी ऊर्जा का संतुलन सम्भव है। एक लेख में मैने विश्व स्तर पर ऊर्जा के व्यवहार के बारे में चार सिद्धांत प्रतिपादित किए थे जो आज

तक की वैज्ञानिक सोच से कुछ या अधिक हटकर हैं। पहला यह कि सष्टि की उत्पत्ति के लिए 'बिग बैंग' के सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है बल्कि यह कार्य शांतिपूर्वक और चरणबद्ध तरीके से आगे बढ़ता है। बिग बैंग का अर्थ है सष्टि के आरम्भ में ऊर्जा का 'महा-विस्फोट'।

दूसरा सिद्धांत यह कि सष्टि की प्रलय भी धीरे-धीरे चरणबद्ध तरीके से होती है जिस प्रकार एक बूढ़े सितारे का ब्लैक होल (कष्ण विवर) में परिवर्तित होना और इसी प्रकार आकाशगंगाओं के मध्य में विद्यमान ब्लैक होल के आकार का लगातार बढ़ते जाना।

तीसरा सिद्धान्त ब्रह्माण्ड के विस्तार के बारे में है जो सबसे विकट प्रश्न है कि ब्रह्माण्ड की आकाशगंगाएं तीव्र गति के साथ केन्द्र से बाहर की तरफ क्यों भाग रही हैं? यह प्रश्न वैज्ञानिकों को बिग बैंग का सिद्धांत मानने के लिए मजबूर कर रहा है। ब्रह्माण्ड का यह विस्तार बिग बैंग के कारण नहीं है बल्कि यह ब्रह्माण्ड के केन्द्र में लगातार बढ़ रहे ब्लैक होल के विस्तार के कारण है। ज्यों-ज्यों इस केन्द्रिय ब्लैक होल का दायरा बढ़ता जाता है त्यों-त्यों इस ब्लैक होल की ताकत बढ़ती चली जाती है जिसके कारण इसकी शक्ति का कार्यक्षेत्र चारों तरफ भी बढ़ता चला जाता है और परिधि पर स्थित आकाशगंगाए भी फैलती चली जाती हैं।

चौथा सिद्धांत सूर्य के मध्य में विद्यमान तापमान के बारे में है। ब्रह्माण्ड में अटखेलियां कर रही ऊर्जा के व्यवहार से संबंधित ये चार सिद्धांत आपस में एक श्रंखला की कड़ियों के रूप में जुड़े हुए हैं। पहला सिद्धांत सष्टि की उत्पत्ति के बारे में है, दूसरा सष्टि की प्रलय,

तीसरा सष्टि के विस्तार और चौथा एक सितारे (सूर्य) के अन्दर ऊर्जा के रूपान्तरण (ट्रांसफोर्मेसन) व स्थिति के बारे में है। ये चार सिद्धांत सष्टि की उत्पत्ति के बारे में उलझी हुई सारी पहेलियों का उत्तर देने में सक्षम हैं। चार सिद्धांतों से बनी हुई इस पूरी श्रंखला को एक नाम दिया जा सकता है और वह है - शून्य मण्डल का सिद्धांत (प्रिंसीपल आफ सिफर जोन)।

यदि हम अपने शरीर में चेतना के व्यवहार के बारे में ठीक से जान लें तो हमें सारे ब्रह्माण्ड में हो रहे परिवर्तनों के बारे में ज्ञान हो सकता है लेकिन इसके लिए हमें ध्यान की गहराईयों में जाना होगा जहां पर मत्यु का द्वार है। मत्यु का भेद जानकर ही नचिकेता की तरह जीवन के रहस्यों को जाना जा सकता है। इसके बिना हम इस ज्ञान को टूटी हुई कड़ियों के रूप में पकड़ सकते हैं, पूरी श्रंखला के रहस्य या सम्पूर्ण प्रक्रिया को नहीं जान सकते हैं और इसमें सुरत-शब्द योग अस्तित्व की गहनतम गहराइयों में झांकने की योग्यता रखता है जो आत्मिक मण्डल की सारी परतों और परतों के बीच में विराजमान चेतन शक्ति के मण्डलों का भेद खोलता है।

ध्यान में जब चेतना की बाहरी परत खुलती है तो सतगुरू के विराट स्वरूप के दर्शन होते हैं, वह विराट स्वरूप जो श्री कष्ण ने अर्जुन को दिखाया था। इसी विराट पुरूष के नूर से सारा ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आता है। ध्यान में इसके प्रकाश में बहते-बहते जब सतगुरू का ख्याल आ जाता है तो सतगुरू नूरी रूप में प्रकट होकर हमारी हर समस्या का जवाब दे देते हैं लेकिन ये बातें भी काल और माया के घेरे में आ जाती

हैं क्योंकि यहां पर रूप, रंग और आकार बनते हैं और बिगड़ते हैं। मन का ख्याल अलग-अलग रूपों में प्रकट होता है और वापिस वहीं पर समा जाता है। बाहरी चेतना के स्तर पर अत्यधिक हलचल है लेकिन बाहरी चेतना जो चंचल होती है, चलायमान होती है, उसका भी साक्षात्कार करना आवश्यक है। पूर्ण अनुभव के लिए चेतना के हर स्तर के सारगुण को ग्रहण करना होता है। जब चेतना अन्दर की तरफ बहने लगती है तब वह सुदर्शन चक्र की तरह घूमने लगती है। स्वामी विवेकानंद इसके बारे में कहते हैं- समाल स्पैक्स फ्लोटिंग आन द स्ट्रीम आफ लाईट, ओपनिंग एण्ड क्लोजिंग। प्रकाश की धार के ऊपर छोटे-छोटे बिन्दू होते हैं जो खुलते हैं और बंद हो जाते हैं। यहां से सुरत-शब्द योग का आरम्भ है। यहां आकर षड्दर्शन पूरा हो जाता है। यह बौद्ध धर्म में दिव्य चक्षु का खुलना है। यहां पर सम्प्रज्ञात या सविकल्प समाधि की पूर्ति हो जाती है। जो वासना हमारे अन्दर बीज रूप में पड़ी हुई है वह जलने लगती है और प्रकाशित हो जाती है। जब कारण वासना का जलना बंद हो जाता है तो वासना के सारे बीज जल कर राख हो जाते हैं और अंधकार आ जाता है जिसे असम्प्रज्ञात, निर्विकल्प या निर्बीज समाधि कहा जाता है। इसे निर्वाण (एक्सटिंक्सन आफ सैल्फ) कहा जाता है। अर्थात् कुछ शेष नहीं रहता, न आत्मा और न ही परमात्मा। यह बौद्ध धर्म का निर्वाण है।

बौद्ध धर्म कहता है कि हम पांच चीजों से बने हुए हैं। जैसे सनातम धर्म पंचतत्व कहता है - आकाश, वायु, अग्नि, जल और पथ्वी। महात्मा बुद्ध ने अपने अन्दर झांककर देखा कि मैं किन-किन चीजों से बना हुआ हूं। सबसे पहले देखा कि रूप है अर्थात् पदार्थ है

जो भिन्न-भिन्न आकार लेता है। फिर कहा कि वेदना है - दुःख है, सुख है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार इत्यादि सबको सताते हैं। तीसरी संज्ञा है जब इन्द्रियों के साथ मिलकर ज्ञान प्राप्त करने लग जाते हैं कि यह गाय है, यह बिल्ली है, यह भेड़ है। चौथा संस्कार, जो सबके अंदर होते हैं। संस्कारों के कारण ही हम जन्म धारण करते हैं। पांचवा विज्ञान है, यही बुद्धि या चेतना है जो इन सबके साथ मेल करके कार्य और कारण के इस संसार को जन्म देता है। बुद्धि तक ही सोचा जा सकता है, बुद्धि तक ही देखा जा सकता है, यही सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिल मुनि कहते हैं। इससे आगे जाकर चेतना थम जाती है। मनुष्य का शरीर इन पांच तत्वों से बना हुआ है और मुक्ति या निर्वाण में ये पांचों तत्व अपने-अपने धर्म में विलीन हो जाते हैं, शेष कुछ नहीं बचता है अर्थात् शुन्य रह जाता है, दीया बुझ जाता है। अब न आत्मा है और न ही परमात्मा। सनातन धर्म कहता है कि पंचतत्व पंचतत्व में विलीन हो जाते हैं, आत्मा बच जाती है, वह कभी नहीं मरती है। एक ही अनुभव है एक ने अस्ति कहा तो दूसरे ने नास्ति।

सुरत-शब्द योग कहता है कि यहां तक का व्यवहार बाहरी चेतना का व्यवहार है, काल और माया का खेल है यहां तक सुख-दुःख से मुक्ति मिल जाएगी, चौरासी के फेर से मुक्ति मिल जाएगी लेकिन साधर्म्य मुक्ति नहीं मिल सकेगी। मुक्ति भी दो प्रकार की है। एक तो यह कि स्वयं का अस्तित्व पूरी तरह समाप्त कर दिया जाए अर्थात् जीवन की सारी गति रोक दी जाएं और संसार को त्याग दिया जाए। सारी इच्छाओं और वासनाओं का गला दबा दिया जाए।

यद्यपि ऐसा करना संभव नहीं है फिर भी कुछ योगी प्रयास करते हैं कि समय की दौड़ से स्वयं को अलग कर दिया जाए। यह मुक्ति एक तरह से स्वयं को अंधकार की कोठरी में बंद करने जैसी है जहां किसी से कोई संबंध न रहे। ऐसी मुक्ति संसार से पलायन करना सिखाती है, यह मुक्ति व्यक्तिगत मुक्ति है। दूसरे प्रकार की मुक्ति का स्वरूप विशाल है। इसमें आत्मा इतनी विशाल हो जाती है कि वह परमात्मा के विश्व रूप में समा जाती है और उसी का रूप बन जाती है। बूंद अखण्ड रूप से समुंद्र में मिल जाती है। अखण्ड रूप से समुंद्र का शरीर धारण कर लेती है। इस मुक्ति में योगी की मुक्ति व्यक्तिगत नहीं हैं बल्कि सार्वभौमिक मुक्ति है, योगी सम्पूर्ण संसार की मुक्ति की कामना करता है और दूसरे जीवों की मुक्ति के लिए संसार में लौट आता है तथा इस कार्य में उनकी मदद करता है। पहले तरह की मुक्ति अर्हत की मुक्ति है जबकि दूसरी तरह की मुक्ति साधर्म्य या बौद्धिसत्व की मुक्ति है। बौद्ध धर्म में व्यक्तिगत मुक्ति के मार्ग को हीनयान और सार्वभौमिक मुक्ति के मार्ग को महायान कहा जाता है जिसमें बुद्ध व्यक्ति संसार के जीवों के लिए स्वयं की मुक्ति को टाल देता है और उनके कल्याण के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देता है। इसे बौद्धिसत्व (बुद्धा-टू-बी) कहा जाता है। साधर्म्य मुक्ति में व्यक्ति संसार में रहते हुए कर्मयोग की साधना करते हुए ईश्वर की साधना करता है और उसके साथ एकता स्थापित करता है, अंग-प्रत्यंग से परमात्मा की चेतना का अविभाजित अंग बन जाता है। भगवद् गीता में इसी मुक्ति को लक्ष्य रखा गया है। दूसरे प्रकार की मुक्ति में आत्मा परमात्मा के निराकार और

निर्गुण रूप का अनुभव भी करती है और उसके कण-कण में समाए हुए अनन्त साकार व सगुण रूपों में भी स्वयं की अभिव्यक्ति पाती है। विराट संसार का हर कत्य उसका अपना कत्य है, हर कर्म उसका अपना कर्म है।

एक दष्टि से देखा जाए तो ऐसी आत्मा सब रूपों से परे, निर्लेप अवस्था में वास करती है जिसका न कभी जन्म होता है और न मत्यु। यह आत्मा का पुरूषोतम रूप है, अमर है, हर प्रकार के सुख-दुःख से निर्लेप है। दूसरी दष्टि से देखा जाए तो सारा अखिल ब्रह्माण्ड उसी आत्मा का कर्म है, उसी का प्रकटीकरण है, वही सम्पूर्ण सष्टि की अधिष्ठाता है। अक्षर पुरूष है, सारे ज्ञान की स्वामी है। अपने तीसरे रूप में वही आत्मा कण-कण में व्याप्त है। हर रूप, हर आकार, हर अस्तित्व उसी की अभिव्यक्ति है। जब आत्मा इन तीनों रूपों में स्वयं को पूर्ण रूपेण एकाकार कर पाती है, और धर्म से इनके साथ पूर्ण एकता अनुभव करती है, तब आत्मा का यह अनुभव साधर्म्य मुक्ति का अनुभव होता है। इस अनुभव में योगी बन्धन में रहता हुआ भी निर्बन्धी कहलाता है, कर्मी होता हुआ भी निष्कर्मी बना रहता है, कर्ता होता हुआ भी अकर्ता बना रहता है - कर्तव्यम् अकतव्यम्।

क्या मात्र सोचने से या विचार करने से ऐसी मुक्ति प्राप्त हो सकती है? जो धार्मिक दर्शन निर्विकल्प समाधि को चेतना का ठहराव मानते हैं उनमें साधर्म मुक्ति का व्यावहारिक अनुभव नहीं हो सकता है। ये मत चेतना की केवल निवति अवस्था का अनुभव कर पाते हैं जिसमें कोई गति नहीं है। जबकि चेतना की ऊपर वर्णन की गई तीन अवस्थाएं गति और ठहराव दोनों की तरफ संकेत कर रही हैं। रचना

के बाहरी स्तर पर आकर यह चित्तशक्ति हलचल में आ जाती है, केन्द्र से बाहर निकलकर उसमें गति आ जाती है और रचना के कार्य में अहम् भूमिका अदा करती है, तथा पुरूष की शक्ति बन कर सष्टि का कार्य संभालती है, प्रकति के साथ एकाकार हो जाती है। जबकि रचना की अन्तरतम धुरी पर यह चित्तशक्ति अडोल और सर्वाधार बन कर मौजूद है, काल व स्थान के पार है, केवल आनंद रूपा है। बाहर की रचना से पूर्णतया उदासीन है लेकिन फिर भी सारी सष्टि का आधार है। जब तक योगी के अन्दर चित्तशक्ति के ये दोनों रूप धारण नहीं हो पाते हैं तब तक साधर्म मुक्ति का अनुभव केवल शब्दों का विषय है, आध्यात्मिक अनुभव व्यावहारिक नहीं हो पाया है और यह तभी हो सकता है जब समाधि की गहराई में जाकर, समाधि के शुन्य मण्डल में जाकर चेतना की गति पूर्णतया अडोल हो जाती है, हर हलचल से पार चली जाती है, मत्यु के अनुभव में समा जाती है, प्रकाश और नाद की हर सीमा को लांघ जाती है और उन्मुनी समाधि के अन्दर जाकर समा जाती है, इसके बाद आत्मा और परमात्मा का भेद पूर्णतया मिट जाता है। पुरूष-प्रकति अभेद रूप में एक दूसरे में समा जाते हैं लेकिन थोड़ा होश में लौटते ही चेतना में हलचल आने लगती है, प्रकाश की धार फूटने लगती है, निर्ध्वनी शब्द प्रकट होने लगता है। जब और अधिक होश आ जाता है तो प्रकाश धारा बनकर बहने लगता है, ध्वनि युक्त नाद गूंजने लगता है लेकिन फिर भी आंखों की पुतलियां इतनी जड़ जाती हैं कि नीचे नहीं उतरना चाहती हैं। यह है सुरत-शब्द योग की निर्विकल्प समाधि का रूप जो

चेतना के बहुत ऊंचे घाट पर जाकर सिद्ध होती है। इस आत्मिक अनुभव में एक ही समय में दो प्रकार का अनुभव समाया हुआ है। चेतना की गति के अन्दर ठहराव और ठहराव के अन्दर गति का अनुभव समाया हुआ है। इस अनुभव में उतरा हुआ योगी सांसारिक कार्य करता हुआ भी चेतना की उच्चतम क्रियाशीलता में व्यवहार करता है क्योंकि समाधि से उठने के बाद भी वह सतगुरू के नूर में ठहरा रहता है, एवर-क्रियेटिव ताकत का यंत्र बनकर कार्य करता है। होली स्पीरिट में जीता है।

सुरत-शब्द योग के अतिरिक्त जितने भी धर्म या दर्शन हैं उन सभी में निर्विकल्प समाधि की सिद्धि चेतना के ठहराव में जाकर होती है जो अंधकार की एक अवस्था है। यह अवस्था नीचे के किसी भी शुन्य मण्डल में प्रकट हो जाती है। चेतना के ठहराव में जाकर जिस मुक्ति की प्राप्ति होती है वह दीए का बुझना है, निर्वाण है अर्थात् अब कुछ नहीं बचा है, जीवन के साथ कोई जोड़ नहीं है, कोई संबंध नहीं है। परमात्मा के जीवन अर्थात् डिवाइन लाईफ का एक सिरा चेतना के व्यवहार से टूट गया है। शब्दों में हम कुछ भी कहते रहें लेकिन व्यावहारिक तौर पर हम महायान की मुक्ति या साधर्म मुक्ति को नहीं जी रहे हैं केवल सिर के ऊपर लादा हुआ शब्दों का भार ढो रहे हैं। व्यावहारिक तौर पर यह निर्वाण की सिद्धि हीनयान की मुक्ति है, अर्हत की मुक्ति है। बौद्धिक स्तर पर हम महायान या साधर्म मुक्ति का अभ्यास कर रहे हैं लेकिन चेतना के जिस स्तर पर जाकर महायान की यह मुक्ति फलित होती है उस आत्मिक अनुभव से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। प्रैक्टीकल अनुभव से खाली हैं केवल ख्याली तौर

पर उसे जी रहे हैं। वास्तविकता से अनजान हैं। छाया को वास्तविकता जानकर भ्रमित हुए जा रहे हैं। काल की परिधि में रहकर, काल के शुन्य मण्डल को ही सतपुरूष का सिंहासन मानकर उस पर डोल रहे हैं। भंवरा फूल के अन्दर बंद होकर आनन्द का अनुभव कर रहा है। यह अधूरी समाधि की प्राप्ति है। इसका आभास केवल शब्द-भेदी सतगुरू करवा सकता है जिसने अभ्यास के सारे दर्जे पार कर लिए हैं। जिसने निज-स्वरूप को प्राप्त कर लिया है। चेतना की बैठक अनामी धाम में हो गई है। अनामी पुरूष की यह ताकत अठारहवें मण्डल पर, अगम, अडोल और अनाम बनकर मौजूद है लेकिन संसार में भी बरत रही है, क्रियाशीलता और विकास के नए-नए दर्जे स्थापित कर रही है, नए-नए आयामों को जन्म दे रही है। हर दिल के अन्दर संजीदगी के साथ इसकी मौजूदगी है। जब हम किसी भी रूप में अपने इष्ट या सतगुरू को याद करते हैं तो अनामी पुरूष की यह चेतना नीचे के मण्डलों में उतरकर उसी का रूप लेकर हमारे सामने प्रकट हो जाती है, उसके नूर का निराकार रूप भिन्न-२ रूप व आकारों में बदल जाता है और हमारी इच्छाओं की पूर्ति करता है। देवी देवताओं, पैगम्बरों और फरिश्तों का रूप लेकर यह चेतना हाजिर हो जाती है और कई बार तो नया इतिहास रच देती है।

जब हमें सतगुरू के दर्शन होते हैं तो चेतना का यही रूप उनके रूप में प्रकट होता है और हमारे अंग-संग रहता है। रहस्य की अनेकों बातें बताता है। अनेकों बार भूत और भविष्य का आभास भी करवा देता है क्योंकि उसके लिए कोई भूत या भविष्य नहीं है, वह तो एक अवरिल

बहती हुई धारा है और अटूट श्रंखला में जुड़ा हुआ अस्तित्व है, वह विचार नहीं है। विचार हमेशा टुकड़ों में होता है और टूटा हुआ विचार या अनियमित कड़ियों में जुड़ा हुआ ज्ञान ही भूत व भविष्य में विभाजित हो सकता है क्योंकि ऐसे ज्ञान का सम्पूर्ण भूत या सम्पूर्ण भविष्य के साथ जोड़ नहीं हैं, लिंक नहीं है। बीच में ज्ञान की कड़ियां टूट गई हैं। ज्ञान की धारा बीच-बीच में विश्राम में आ गई है। चेतना का ज्ञान तो एक अटूट धारा में बहता हुआ एक अविचारणीय और अविभाजित ज्ञान है जिसे श्री अरविन्द रियल आइडिया (ईश्वरीय विचार) कहते हैं। यह विचार हमारे विचार की तरह नहीं है बल्कि इसके सारे बिन्दू हर बिन्दू के साथ जुड़े हुए हैं और हर सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दू के अन्दर सम्पूर्ण अस्तित्व का ज्ञान संचित है जिस प्रकार शरीर की एक जीन या सैल के अन्दर सारे शरीर का ज्ञान समाया हुआ रहता है। अतः चित्तशक्ति या परामाया या पराशक्ति के लिए कुछ भी भूत या भविष्य नहीं है। वह काल और स्थान के परे है और उसे पराज्ञान या पराप्रकति कहा जाता है। यह ज्ञान किसी शब्द या किसी विचारणीय विचार पर आधारित नहीं है बल्कि अन्तर्ज्ञान बनकर सूर्य के रूप में आत्मा के अन्दर चमकता है जिसे श्री अरविन्द 'नोसिस' या विज्ञानमय पुरूष कहकर पुकारते हैं। शास्त्र इसे सूर्यब्रह्म कहकर पुकारते हैं। जैसे सूर्य कोई विचारणीय विचार नहीं हैं, कोई शब्द ज्ञान नहीं है बल्कि समस्त विचारों और सम्पूर्ण ज्ञानों का ज्ञान है, एक ऐसा स्त्रोत है, जहां से सारा ज्ञान निकलता नहीं बल्कि बहता है। इसे वेदों ने सावित्री शब्द या गायत्री शब्द कहकर पुकारा है। जो देवताओं की आंख है और सम्पूर्ण त्रिलोकी का अधिष्ठाता

ब्रह्म है। यही ज्ञान जब मनुष्य के अन्दर बहने लग जाता है तो वह व्यक्ति एक पूर्ण व्यक्ति बन जाता है। वह जो भी कार्य करता है, उसका परिणाम उसे शीघ्र ही मिलने लगता है। उसके अन्दर कोई भी इच्छा उठती है तो उस इच्छा की पूर्ति करने के साधन शीघ्र ही उसके सामने प्रस्तुत होने लगते हैं क्योंकि वह अस्तित्व की अविरल रूप से बहती हुई चेतना (राधा) की धारा से जुड़ा हुआ रहता है। ऐसे व्यक्ति की इच्छा उस धारा के माध्यम से चारों ओर सूक्ष्म रूप में फैल जाती है और उस इच्छा की पूर्ति करने वाले साधन स्वयं ही उस व्यक्ति की ओर उन्मुख हो जाते हैं। यदि अंतर में चेतना की धार टूटी हुई है तो परिणाम धीरे-धीरे और अधूरे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति का जोड़ और मेल-मिलाप भी चेतना की उन्नत अवस्था में जीने वाले व्यक्तियों के साथ होने लगता है, बुरे व्यक्तियों के साथ संयोग कुदरती ही टल जाता है। इसलिए बुरे कर्मों के फल स्वतः ही टल जाते हैं क्योंकि चेतना के जिस आयाम (डायमेंसन) या धार पर बुरे कर्मो के संस्कार पड़े हुए हैं व्यक्ति उस आयाम को छोड़ जाता है और चित्त-शक्ति के श्रेष्ठ घाट पर रहकर जीवन जीता है। यही कारण है कि संत-महात्माओं के संग से व्यक्ति अनेक बुराइयों से बच जाता है। कहा जाता है कि संतों का संग करने से व्यक्ति के काल कर्म कट जाते हैं :

संतों के दर्शन से आई टले बला।
जो दर्द सूली का वो सूल में टल जा।।

विचार के ऊंचे घाट पर जीने से सूली की सजा सूल में टल जाती है। इसलिए संत चरणों को गंगा की धार कहा जाता है

जो जहां पड़ते हैं वहीं बरकत आरम्भ हो जाती है।

संत चरण गंगा की धारा,
जहां टिकें हो निस्तारा।
सतगुरू राजी तो कर्ता राजी,
काल-कर्म की लगे ना बाजी।।

राधास्वामी पंथ के दूसरे संत हुजूर सालिगराम जी महाराज कहते हैं कि सतलोक तक साकार रचना है। महर्षि शिवव्रतलाल जी कहते हैं कि सतलोक में इस ब्रह्माण्ड का आखरी सूर्य है। उस सूर्य से नीचे के सारे सौर मण्डल और आकाशगंगाएं उसके चारों ओर चक्कर लगा रहे है तथा वही इन सब की ऊर्जा का स्त्रोत है। क्या सतलोक तक साकार रूप को पकड़कर नहीं पहुंचा जा सकता है? जब सतलोक तक साकार रचना है तो वहां तक सतगुरू के साकार रूप को पकड़कर पहुंचा जा सकता है। हुजूर महाराज कहते हैं कि सतलोक तक अनहद शब्द को भी पकड़ने की जरूरत नहीं है, स्वरूप को पकड़ लो, प्रकाश की धारा को पकड़ लो आप वहां पहुंच जाएंगे। शब्द भी आता है, कोई कठिनाई नहीं है उसे आने दो, उसका ख्याल करने की जरूरत नहीं है। शब्द भी आएगा और प्रकाश भी आएगा। इसलिए सतगुरू हमें नूरी रूप का सहारा देकर वहां तक ले जा सकता है।

जब किसी व्यक्ति को सतगुरू के दर्शन हो जाते हैं तो वह सारा दिन खुश रहता है। साकार रूप में सतगुरू का दर्शन

आध्यात्मिक उन्नति की निशानी है और जब यही दर्शन नूरी सतगुरू के रूप में होता है तो इस दर्शन को सतगुरू के चरण कहा जाता है जिसका कोई व्यक्तिगत रूप नहीं होता है। सतगुरू का यह नूरी (प्रकाशित) रूप हमें सतलोक तक ले जा सकता है। सतगुरू के साकार रूप के दर्शन भी शिष्य को आगे बढ़ने में मदद करते हैं। मदर टरेसा को जीसस के दो पल के दर्शन हुए जिसने उनका सारा जीवन ही बदल कर रख दिया। इसलिये व्यक्ति के रूप में सतगुरू के दर्शन भी अध्यात्म को दुरस्त बनाने में मदद करते हैं बल्कि भक्ति मार्ग पर आरूढ़ शिष्य तो कितनी भी ऊंचाई पर चला जाए, सतगुरू के व्यक्तिगत दर्शन को अधिक महत्व देता है। जब तक वह उसके दर्शन नहीं कर लेता है उसे चैन नहीं पड़ता है। यद्यपि सुरत-शब्द योग में व्यक्तिगत दर्शन को चेतना का बाहरी रूप माना जाता है, सतह का दर्शन माना जाता है। मनुष्य का जैसा ख्याल होता है यह रूप वैसा ही चोला लेकर प्रकट हो जाता है। यह रूप व्यक्ति की भावनाओं का उभार होता है लेकिन साधना के एक स्तर पर यह भी आवश्यक है क्योंकि यह दर्शन चेतना की दशा को दर्शाता है। जब मन की बिखरी हुई वति एकाग्र होती है तभी यह रूप बनने लगता है और ख्याल के अनुसार आकार लेता है। जब व्यक्ति ख्याल से सतगुरू के साथ प्रेम करता है तभी ख्याली रूप के दर्शन हो पाते हैं। जब व्यक्ति सतगुरू के प्रेम में तड़फता है तभी सतगुरू के प्रति उसका ख्याल मजबूत

होता है और उसे सतगुरू के ख्याली रूप (व्यक्ति के रूप में) के दर्शन हो पाते हैं। जब तक ख्याली रूप नहीं पकता है तब तक सतगुरू के नूरी रूप (प्रकाश) के दर्शन नहीं हो सकते हैं क्योंकि जब मन की सारी वति एकाग्र होती है तभी वह दिव्य धारा बनकर बहने लगती है, वत के रूप में चक्कर काटने लगती है। टूटी हुई वति या अधूरी एकाग्रता मन की चेतना को उर्ध्वमुखी नहीं बना पाती है। अतः जो व्यक्ति अंधकार में रहते हैं उन्हें न तो आसानी से सतगुरू के ख्याली रूप के दर्शन होते हैं और नूरी रूप के दर्शन तो उनसे अति दूर हैं। इसलिए देही सतगुरू का महत्व अध्यात्म में बहुत अधिक है जिसे माध्यम बनाकर भक्त प्यार करता है, अपने ख्याल को जोड़ता है और ऐसा करते-करते वह अनजाने ही अपने अन्दर के नूरी सतगुरू से जुड़ जाता है। देही सतगुरू का एक और बड़ा लाभ यह है कि इससे व्यक्ति का अहंकार टूटता है, उसका सिर झुकता है, उसे प्रेम करने का अपनी श्रद्धा और विश्वास के अनुसार एक साधन मिल जाता है जहां वह अपनी सारी ऊर्जा को उड़ेल देता है, बेहिचक और निर्मल होकर एक ही बिन्दू पर आकर सिमट जाता है। हमशक्ल और हमजीन के साथ प्रेम करना और भी आसान होता है जिससे आसानी से मन की वति बंधने लगती है।

मन अनेक आकारों में रहता है इसलिए मन के इन सभी आकारों से छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य को अपना मनपसंद आकार और रूप मिले जहां वह अपने मन के सभी

रूप, सारे आकार और पंसद को समर्पित कर सके। अनेक वासनाओं से हटकर वह अपनी मनपसंद जगह पर आकर टिक सके। इसके बाद जब उसका वह इच्छित व्यक्तिगत रूप या आकार पक जाता है तो वह उसके ख्याल में समा जाता है और उसे सतगुरू के ख्याली रूप के दर्शन होने लगते हैं, फिर वही ख्याली रूप नूरी रूप और फिर नादी (अनहद नाद) रूप में बदल जाता है जिसमें से सारा ज्ञान, समस्त आकार और रूप जैसे देवी, देवता, पैगम्बर, अवतार आदि प्रकट होते हैं। इससे उसकी समझ बढ़ती चली जाती है और वह चेतना की विशालता में समाता चला जाता है। वह धीरे-धीरे मन की सीमित दीवारों को लांघ जाता है। विचार की परिधि को पार कर जाता है, सारी भावनाओं को पीछे छोड़ जाता है, यही है भावातीत, विचारातीत और मनातीत ध्यान की सिद्धि।

सतगुरू के रूप का प्रकट होना अच्छा लक्षण माना जाता है, यही हमें आगे लेकर जाता है। जब तक सतगुरू का यह रूप साथ रहता है तब तक ध्यान के दर्जे आसानी से पार होते जाते हैं। जब आन्तरिक (नूरी व नादी) सतगुरू हर समय साथ रहने लगता है तो सतगुरू के स्थूल रूप के साथ भी साधक का प्यार बढ़ने लगता है और ज्यों-ज्यों यह प्यार बढ़ता जाता है त्यों-त्यों सतगुरू का अरूण (नूरी) रूप भी साधक के अन्दर अधिक तीव्रता और घनता के साथ बहने लगता है। इसका खिंचाव इतना आनन्ददायक होता है कि साधक को बार-बार और अधिक समय तक ध्यान

में बैठने के लिए मजबूर करता है और साधक भी इसकी मस्ती में झूमता चला जाता है। ऐसा होने पर उसका हर तरफ या हर सांसारिक वासना से मन हटता चला जाता है और वह पूर्णतया एक रूप पर टिक जाता है। इसे शिष्य की गुरूमुखता कहा जाता है अर्थात उसके मन की टकटकी हर समय अपने गुरू या इष्ट पर टिकी रहती है और वह नूरी गुरू और नादी गुरू की चेतना का अपने ही अन्दर में अनुभव करते हुए आगे बढ़ता चला जाता है और उसके इस रूप में समाकर उसी का रूप बनता चला जाता है, असम्प्रज्ञात और निर्विकल्प समाधि निर्विघ्न घटित होने लगती है। ध्यान रखने की बात यह है कि अंत में साधक को हर रूप को छोड़ देना होता है और निजरूप में स्थित होना होता है बल्कि निजरूप से ही आगे आनन्द के सागर में समा जाना होता है जहां संसार के सारे रूप, सारे धर्म, सभी अवतार और पैगम्बर फनाह हो जाते हैं।

राधास्वामी।

जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न

- क्या धर्म रोजी-रोटी दे सकता है?
- क्या अध्यात्म से दु:खों का छुटकारा हो सकता है?
- क्या अध्यात्म धन और आश्रमों का मोहताज हो गया है?
- क्या सत्संग केवल धन कमाने का साधन बन गया है?
- क्या धर्म देश और समाज को सुरक्षा दे सकता है?
- क्या धर्म बिखरे व्यक्तित्व और समाज को जोड़ सकता है?
- क्या परमात्मा अमीर लोगों की धरोहर बन गया है?
- अध्यात्म क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है?
- क्या अध्यात्म, विज्ञान और संसार एक दूसरे के विरोधी हैं?
- क्या शरीर, मन व आत्मा अलग-अलग हैं?
- कुण्डलीनी जागरण क्या है?
- अनहद शब्द व धुन में क्या अन्तर है?
- परम्परावादी और आत्मनिष्ठ धर्म में क्या अन्तर है?
- कर्मकाण्ड बन्धन व दु:ख का कारण क्यों बन जाता है?
- सभी धर्मों की उत्पत्ति मानसिक संसार से है, कैसे?
- अच्छी संगत से बुरे कर्म कैसे कट जाते हैं?
- सतगुरू सूली का दर्द सूल में कैसे बदल देता है?
- सिद्ध पुरूष की इच्छा शक्ति मजबूत क्यों हो जाती है?
- सृष्टि की प्रलय व शरीर की मृत्यु का क्या सम्बन्ध है?
- अभ्यास की अट्ठारह मंजिलें कौन सी हैं?
- क्या भाग्य को बदला जा सकता है?
- क्या मन व अंहकार वास्तव में बुरे हैं?
- अध्यात्म के लिए विशाल दृष्टि जरूरी क्यों?
- सुरत-शब्द योग का मार्मिक रहस्य क्या है?
- व्यक्तिगत अस्तित्व व ब्रह्माण्ड में कितनी समानता है?
- ध्यान से समस्याओं का समाधान कैसे मिलता है?
- ध्यान से संसार का विनाश भी हो सकता है, कैसे?
- प्रेतात्मा व देवात्मा के प्रकट होने का कारण व अर्थ
- उत्पत्ति व प्रलय का वैज्ञानिक व अध्यात्मिक आधार क्या है?
- नाम व ध्यान का विज्ञान क्या है?
- कामधेनू गाय व कल्ववृक्ष की प्राप्ति क्या है?
- असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति कैसे हो?

.....इत्यादि प्रश्नों के उत्तर जानिऐ?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र

पुस्तक सूची

1. सतगुरू ताराचन्द जी महाराज के 101 अनमोल रत्न
2. रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश
3. आत्मिक सफर और रूहानी मंजिलें (प्रश्नोतरी)
4. संत अवतरण
5. सम्यक समाधि : आत्मिक सफर की कहानी
6. पुरूष-प्रकृति
7. ईसा-मसीह कौन हैं?
8. युद्ध और जीवन दर्शन
9. अवतार अवतरण रहस्य
10. अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?
11. प्रेम और भक्ति का शिखर
12. सत्य और धर्म का अनुभव क्या इसी जन्म में संभव है?
13. टूटते रिश्ते बढ़ता अंधविश्वास व अध्यात्म
14. बच्चों पर सत्संग का प्रभाव
15. विश्व की समस्याएं और आध्यात्मिक समाधान
16. पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य
17. क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग-अलग हैं?
18. मनुष्य के लिए अध्यात्म जरूरी क्यों ?
19. आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य